शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में निरपेक्ष एवं ईश्वर के संप्रत्यय का अनुशीलन

प्रियान्शु अग्रवाल

शोध छात्र (UGC-JRF), दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सार:-

प्रस्तुत शोध-पत्र निरपेक्ष अथवा ब्रह्म एवं ईश्वर के संप्रत्यय को व्यापक रूप से शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन के संदर्भ में विवेचित करता है। भारतीय एवं पाश्चात्य जगत के मूर्धन्य विद्वानों विशेषकर शंकराचार्य एवं ब्रैडले के निरपेक्ष एवं ईश्वर संबंधी विचारों में निहित साम्यताओं एवं वैषम्यताओं का अनुशीलन करना, इस शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य है। इस हेतु शोध-पत्र के अंतर्गत सर्वप्रथम यह विमर्श किया गया है कि क्यों उक्त दोनों दार्शनिकों के संदर्भ में ही ब्रह्म एवं ईश्वर की अवधारणा का विवेचन किया गया है। द्वितीयत:, शंकराचार्य एवं ब्रैडले दोनों के सत् या निरपेक्ष संबंधी विचारों का विश्लेषण किया गया है। तृतीयत:, दोनों के दर्शन में सत् एवं ईश्वर के स्वरूप का विमर्श प्रस्तुत करते हुए तुलनात्मक अध्ययन किया गया है और अंत में उपरोक्त बिंदुओं का गहन मूल्यांकन करते हुए निष्कर्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द:- निरपेक्ष, सत्, ब्रह्म, ईश्वर, जगत, आभास, शंकराचार्य एवं ब्रैडले।

परिचय:-

सामान्यत: दार्शनिकों का यह मानना है कि यदि शंकराचार्य के अद्वैत वेदांत का गहनतापूर्ण अध्ययन करें, तो हमें यह ज्ञात होता है कि ब्रैडले का निरपेक्षवादी दर्शन शंकराचार्य के दर्शन से अनेक मायने में साम्य रखता है। इसी कारण डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन अपनी पुस्तक Indian Philosophy में उद्धृत करते हैं कि "पाश्चात्य विचारकों में ब्रैडले, शंकराचार्य के सर्वाधिक निकटस्थ है" (Among western thinkers Bradley comes nearest to Sámkara-)।[1] जिस प्रकार शंकराचार्य ने ब्रह्म को ही परमसत् कहा है, उसी प्रकार ब्रैडले ने अव्याघात (Non&contradiction) को निरपेक्ष का निकष माना है। इस प्रकार यदि हमें शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में ईश्वर की अवधारणा का विश्लेषण करना है, तो दोनों के दर्शन के संदर्भ में निरपेक्ष की अवधारणा का भी विवेचन नितांत आवश्यक है।

1. शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में सत् (निरपेक्ष) की अवधारणा:-

यद्यपि शंकराचार्य एवं ब्रैडले दोनों ने ही सत् या निरपेक्ष को समस्त संबंधों से परे स्वीकार किया है, लेकिन उनकी असंबंधमूलक सत् की अवधारणा में काफी भिन्नता है। शंकराचार्य के अनुसार सत् मूलत: एक ही है जो निर्गुण, निरुपाधिक, निराकार, निर्विशेष, निर्वयव है। यही ब्रह्म हमारी आत्मा का भी सारभूत तत्व है। शंकराचार्य की मान्यता है कि ब्रह्म ही सभी आभासों का आधार है। उनका मत है कि कोई भी चीज चाहे वह निम्न हो या श्रेष्ठ, सत् से पृथक होते ही आधारहीन हो जाती है। यद्यपि ब्रैडले का निरपेक्ष मूर्त विशेष है और वह आत्मा या अन्य द्रव्य के साथ उसका तादात्म्य स्थापित नहीं करता है। ब्रैडले के अनुसार सत् समानता एवं विषमता का मूर्त सामंजस्य (Concrete Unity) है। ब्रैडले इस पर विश्वास करता है कि निरपेक्ष को एक सर्वसमावेशी (All&inclusive) तथा अतिसंबंधमूलक अनुभूति (Supra-relational ezperience) के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। ब्रैडले निरपेक्ष का तादात्म्य न तो मन के साथ न ही आत्मा के साथ करता है, बल्कि वह कहता है कि यह मन के द्वारा अनुभूत होता है। इस तरह निरपेक्ष की इस मात्रात्मक अवधारणा में अवश्य ही मूल्यांकन करने की महान त्रुटि निहित है।

हालाँकि इस कारण शंकराचार्य ने ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता माना है- "एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति"। उनका मत है कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं है, वह अद्वितीय है- "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म"।[2] इसका तात्पर्य यह है कि ब्रह्म किसी भी प्रकार के भेदों अर्थात् सजातीय (अंत:), विजातीय (बाह्य) एवं स्वगत आदि से अछूता है और इसीलिए शंकराचार्य अंतत: ब्रह्म को संबंधातीत एक विशुद्ध सत्ता के रूप में निरूपित करने में सफल हुए हैं। वास्तव में, ब्रैडले ने निरपेक्ष को असंबंधमूलक सर्वसमावेशी सत्ता मानकर अनजाने में एक ही साथ एवं एक ही समय में दो दृष्टिकोणों को स्वीकार किया है। जहाँ एक ओर वह निरपेक्ष को मूर्त सामान्य मानता है जिसमें सभी आभास निहित होते हैं, तो वहीं दूसरी ओर वह निरपेक्ष को एक असंबंधमूलक अनुभूति स्वीकार करता है जिसे वह अव्यवहित अनुभूति की संज्ञा देता है। पूर्ववर्ती विचार निरपेक्ष को एक विषय में परिवर्तित कर देता है, जबकि उत्तरवर्ती विचार निरपेक्ष को शंकराचार्य की भांति आत्म की अवधारणा से संयुक्त कर देता है।

इसके अतिरिक्त शंकराचार्य अपने सिद्धांत को विशुद्ध रूप से अनुभूति पर आधृत करते हैं, लेकिन ब्रैडले ऐसा नहीं करता। शंकराचार्य का निरपेक्ष किसी प्रत्यक्ष अनुभूति पर आश्रित नहीं है और वह पूर्णत: एक आदर्श अवधारणा है। शंकराचार्य इस पर जोर देते हैं कि ब्रह्म का ज्ञान श्रुति पर आश्रित है और मानव

जीवन का परम लक्ष्य ब्रह्म का साक्षात्कार है जो कि इसी जीवन में प्राप्त किया जा सकता है। परंतु ब्रैडले ऐसा विचार नहीं करते हैं कि परम लक्ष्य निरपेक्ष के ज्ञान की प्राप्ति है, क्योंकि उनके अनुसार किसी मानव को ऐसा ज्ञान प्राप्त होना असंभव है। ब्रैडले स्वयं उद्धृत करते हैं कि "निरपेक्ष एक ऐसी सत्ता है जिसका हमें कोई प्रत्यक्ष ज्ञान (No direct knowledge) नहीं होता"।[3] ब्रैडले का तर्क है कि निरपेक्ष को अव्यवहित अनुभूति द्वारा ही जाना जा सकता है अर्थात् निरपेक्ष मात्रा अविवाहित अनुभूति का विषय है। परंतु उसके द्वारा वर्णित अव्यवहित अनुभूति हमें निरपेक्ष का पूर्ण बोध नहीं प्रदान करती है। इसके साथ ही ब्रैडले ने कभी भी भावना एवं अव्यवहित अनुभूति में कोई स्पष्ट अंतर की चर्चा नहीं की है। इसीलिए वे भावना से निरपेक्ष के ज्ञान को निगमित करने की बात करते हैं, जहाँ निरपेक्ष एवं भावना स्वयं में असंबंधमूलक हैं। हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि वे इस व्युत्पत्ति तक कैसे पहुंचे, क्योंकि पूर्व में ब्रैडले कहते हैं कि भावना एक निम्न-बौद्धिक सत्ता (Infra-rational Unity) है जो कि अव्यवहित अनुभूति के विकास की ही प्रथम अवस्था है। यद्यपि ब्रैडले की निरपेक्ष संबंधी अवधारणा से कोई विशिष्ट या पूर्ण विचार प्राप्त नहीं हो सकता है, अपितु मात्र सामान्य विचार ही प्राप्त हो सकता है। ब्रैडले ने निरपेक्ष की अवधारणा को अनिवार्य माना है, फिर भी यह प्रतीत होता है कि उनका यह दावा सुसंगत तार्किकता के विपरीत स्वयं को सही सिद्ध करने में विफल रहा है। शंकराचार्य के ही समान ब्रैडले ने भी निरपेक्ष विषयक ज्ञान हेतु विचार को असक्षम स्वीकार किया है, लेकिन शंकराचार्य के विपरीत ब्रैडले विचार को सत् में समाविष्ट मानता है। प्रत्युत, उपरोक्त विवेचन के उपरांत यदि हम शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में व्याप्त निरपेक्ष या ब्रह्म और ईश्वर संबंधी अवधारणा पर गहन विचार करें, तो उसे संदर्भ में कुछ भिन्नताएं अवश्य प्रस्तुत होती हैं।

2. शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में ब्रह्म एवं ईश्वर का संप्रत्ययः-

अद्वैत वेदांती शंकराचार्य के अनुसार परमसत् अपरिवर्तनीय, शाश्वत, कूटस्थ तथा समस्त गुणों, कार्यों, भेदों एवं मतभेदों से रहित है, यही निरपेक्ष है। यह सत्यों का सत्य है, विशुद्ध चौतन्य है। हम इसे एक भी नहीं कह सकते, क्योंकि यह गणना की सीमा से परे है। शंकराचार्य ने अपने निर्वाण दशकम् में स्वयं उद्घोषित किया है कि-

"न चैकं तद्न्यद् द्वितीयं कुतः स्याद्
न वा केवलत्वं न चाऽकेवलत्वम्।
न शून्यं न चाऽशून्यमद्वैतकत्वा-
त्कथं सर्ववेदान्तसिद्धिं ब्रवीमि"।।[4]

अर्थात् ब्रह्म एक नहीं है एवं उससे भिन्न दूसरा भी कैसे हो सकता है? इसमें न तो निरपेक्षता है और न ही अनिरपेक्षता। यह न तो शून्य है एवं न ही अशून्य है, क्योंकि द्वैत से रहित है जो ब्रह्म संपूर्ण वेदांत का सार है उसका वर्णन मैं किस प्रकार से कर सकता हूँ। हम ब्रह्म के विषय में मात्र इतना कह सकते हैं कि यह विशुद्ध अस्तित्व वाला होने के कारण सत्, चित् एवं आनंद स्वरूप है अर्थात सच्चिदानंद स्वरूप है। सत्, चित् एवं आनंद, ब्रह्म के न तो गुण हैं और न ही उसके अंश हैं, अपितु यह स्वयं ब्रह्म को द्योतित करते हैं।

इसके अतिरिक्त, यदि इस प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य है कि हम जगत को कैसे व्याख्यायित कर सकते हैं जो की प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। शंकराचार्य ने इसका बहुत सटीक समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जगत अज्ञानजन्य मानव मस्तिष्क के द्वारा ब्रह्म पर आरोपित एक आभास मात्र है। इस अविद्या को स्वभावतः अनादि कहा गया है जो विवरण के समस्त रूपों का पराभव कर देती है, इसीलिए यह अविद्या अनिर्वचनीय है। क्योंकि मानव स्वयं इस अविद्या को विवरण रूप में ग्रहण करने में सक्षम नहीं है इसलिए वह इस माया के प्रभाव के कारण इसे निरपेक्ष का गुण मान लेता है। इस पूरी प्रक्रिया में माया के प्रभाव के कारण निर्गुण ब्रह्म सगुण हो जाता है जिसे सामान्यतः ईश्वर कहकर पुकारा जाता है। हमें ज्ञात है कि शंकराचार्य के अनुसार यद्यपि जगत सत् नहीं है, फिर भी पूर्णतः असत् भी नहीं है। इसी प्रकार उन्होंने ईश्वर की भी उतनी ही सत्ता बतलायी है जितनी कि जगत की। यद्यपि निरपेक्ष की दृष्टि से परमसत् में कोई भेद नहीं माना गया है, किंतु मानव एवं ईश्वर के मध्य भेद को मात्र सभी व्यावहारिक उद्देश्य हेतु स्वीकार किया गया है। ईश्वर का निषेध नहीं किया गया है, किंतु उसका एक सापेक्ष अस्तित्व प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार शंकराचार्य के दर्शन में अविद्या एवं निरपेक्ष की कल्पना एक अनोखे संबंध के रूप में की गई है। ब्रह्म अविद्या से लेशमात्र भी प्रभावित नहीं होता। ऐसे संबंध की तुलना एक लाल पुष्प एवं एक पारदर्शी स्फटिक से की जा सकती है, क्योंकि जैसे ही स्फटिक को लाल पुष्प के पास रखते हैं वह भी लाल प्रतीत होने लगता है, किंतु वास्तविकता में स्फटिक लाल नहीं होता है और इसमें कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। इसी प्रकार ईश्वर अज्ञान के साथ संयुक्त होकर ब्रह्म प्रतीत होता है।

हालांकि शंकराचार्य के दर्शन में ईश्वर का केंद्रीय स्थान है जो कि ब्रैडले के दर्शन में इसके समकक्ष नहीं है। शंकराचार्य ने ईश्वर को कभी भी ब्रह्म से पृथक रूप में विवेचित नहीं किया है। इस रूप में ईश्वर एवं ब्रह्म दो सत्ताएं नहीं हैं, अपितु दो भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखी गई सामान सत्ताएं हैं। आनुभविक दृष्टि से ईश्वर जगत के भगवान, शासक, निर्माता, पालनकर्ता एवं संहारक हैं और जब पारमार्थिक दृष्टि से ब्रह्म या निरपेक्ष की बात की जाती है, तो वहाँ ब्रह्म की ही एकमात्र सत्ता है। इसके विपरीत जब कोई निरपेक्ष या ब्रह्म के संदर्भ में बात करता है, तो जीव, जगत एवं ईश्वर आनुभविक स्तर पर अपनी स्थिति को खो देते हैं और वे केवल आभास मात्र रह जाते हैं। जब हमें ब्रह्म विषयक ज्ञान होता है, तो ईश्वर परमसत् नहीं रह जाता है।

इसके अतिरिक्त, ब्रैडले का निरपेक्ष एवं ईश्वर के प्रति नितांत भिन्न दृष्टिकोण है। यद्यपि उन्होंने भी यह माना कि ईश्वर एवं निरपेक्ष दो पृथक-पृथक स्वतंत्र सत्ताएं नहीं है, किंतु निरपेक्ष ईश्वर की पूर्णता अवश्य है। धर्म का ईश्वर उसके लिए भी आभास मात्र है और इसीलिए ईश्वर भी अन्य आभासों की भांति आंशिक सत् ही है। यद्यपि ईश्वर में निहित सत्यांश अन्य सभी आभासों की अपेक्षा अधिक है। क्योंकि निरपेक्ष सर्वसमावेशी सत्ता है और आभास इसकी पूंजी है इसीलिए यह अपने अपरिहार्य अंशों में से एक के रूप में ईश्वर को अपने आप में समाविष्ट कर लेता है। ब्रैडले का तर्क है कि ईश्वर एक आभास ही है, क्योंकि वह संबंधों से परे नहीं हो सकता। ब्रैडले के अनुसार ईश्वर अपने सत् से अवगत है और मानव के साथ मिलन में आत्मचौतन्य है। ईश्वर एवं मानव दोनों में सत् के दो भिन्न-भिन्न स्तर हैं जिसमें ईश्वर मनुष्य से उच्च स्तर पर है और अंततः ईश्वर एवं मानव दोनों ही निरपेक्ष में विलीन हो जाते हैं।

ब्रैडले का मत है कि निरपेक्ष को ईश्वर नहीं कहा जा सकता, क्योंकि निरपेक्ष किसी अन्य वस्तु से संबंधित नहीं होता है। ब्रैडले ने स्वयं अपनी पुस्तक Essays on Truth and Reality में उद्धृत करते हैं कि "मेरे लिए निरपेक्ष ईश्वर नहीं हो सकता, क्योंकि अंतत: निरपेक्ष का किसी से कोई संबंध नहीं है और इसके एवं सीमित संकल्प के मध्य कोई व्यावहारिक संबंध नहीं हो सकता" (The Absolute for me cannot be God, because in the end the Absolute is related to nothing, and there cannot be a practical relation between it and the finite will-)।[5] शंकराचार्य की भांति ब्रैडले ने भी स्वीकार किया है कि निरपेक्ष असंबंधमूलक है और इस तरह यह सदैव एक स्वतंत्र एवं पूर्ण सत्ता बना रहता है। इस कारण से निरपेक्ष एवं सीमित संकल्प के मध्य किसी भी प्रकार से व्यवहार की कसौटी पर कोई संबंध नहीं हो सकता। सीमित संकल्प एवं धर्म का विषय अर्थात् ईश्वर के मध्य संबंध विद्यमान है और सीमित के साथ ऐसा संबंध ईश्वर को एक सीमित सत्ता बना देता है। अतएव, ईश्वर आभास में परिवर्तित हो जाता है।

यद्यपि शंकराचार्य की स्थिति ब्रैडले से निश्चितरूपेण भिन्न है, क्योंकि उन्होंने आनुभविक स्तर पर ब्रह्म एवं ईश्वर को सत् के दो स्तरों के रूप में माना है। परंतु वे बारंबार उद्घोषित करते हैं कि पारमार्थिक स्तर पर दोनों के मध्य कोई भिन्नता नहीं है और इसीलिए एक दूसरे की पूर्णता का कारण नहीं हो सकता है। शंकराचार्य के अनुसार सत्य के कई स्तर होते हैं निम्न के निषेध से उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक पहुंचा जा सकता है। इसी कारण से शंकराचार्य को निम्न स्तर के साथ में उच्च स्तर को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। परंतु ब्रैडले इस संदर्भ में अलग दृष्टिकोण का वाहक है। वह नि:संदेह सत्य के स्तरों को मानता है, लेकिन वह उन्हें किसी पदानुक्रम या किसी आरोही क्रम में सुव्यवस्थित नहीं करता है, बल्कि उसका मत है कि निरपेक्ष के साक्षात्कार हेतु यह सभी स्तर आवश्यक हैं। सर्वप्रथम, सीमित आभासों का स्तर है जो कि पूर्णत: सत् न होकर अपितु आंशिक सत् है। इससे ऊपर व्यक्तिगत आत्म का स्तर है जो कि ईश्वर के स्तर के द्वारा सिद्ध होता है। ब्रैडले का कहना है कि इन स्तरों को सत्यांश के आधार पर व्यवस्थित किया गया है। उसके अनुसार ईश्वर अन्य सभी आभासों की अपेक्षा उच्चतर सत्यांश वाला है, किंतु यह सभी सत्यांश एक साथ निरपेक्ष की अनुभूति के लिए परम आवश्यक हैं। अतएव, ब्रैडले के अनुसार ईश्वर गुणात्मक रूप से अन्य आभासों से परे है। वह जगत का सृष्टा नहीं है, अपितु अन्य आभासों में से एक है। क्योंकि जगत की सभी वस्तुएं सीमित स्वभाव के कारण आंशिक सत् मात्र हैं, इसीलिए उनमें से किसी को भी अन्य से पूर्व व्याप्त नहीं कहा जा सकता है। वे ईश्वर सहित जो कि निरपेक्ष के आभासों में से एक है, चिरकाल से सह-अस्तित्व में है और इसीलिए अन्य के सृष्टा के रूप में ईश्वर के साथ ही किसी विशेष सत्ता के बारे में चर्चा करना और औचित्यपूर्ण नहीं है। इस तरह उन्होंने माना कि सीमित जीव के लिए सृष्टि या जगत की वस्तुओं को व्याख्यायित करना संभव नहीं है, अपितु इसे केवल प्रतिभान के द्वारा ही समझा जा सकता है। ईश्वर, आत्मा और जगत आदि निरपेक्ष प्रकृति के ही अंश हैं अर्थात् यह सभी निरपेक्ष की अभिव्यक्तियां मात्र हैं। इस रूप में जब निरपेक्ष का ज्ञान होता है, तो आभासों का निषेध नहीं किया जाता है, बल्कि किसी को भी निरपेक्ष का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने हेतु अनंत वस्तुओं को जानना होगा।

हालांकि शंकराचार्य निरपेक्ष विषयक ज्ञान के प्रति ब्रैडले से भिन्न विचार के पोषक हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है की ब्रह्म इस ब्रह्मांड का आधारभूत तत्व है जो समस्त विविधता को अंतर्निहित करने वाली विशुद्ध सत्ता है, किसी को भी ब्रह्म विषयक ज्ञान प्राप्त हेतु पहले वस्तुओं के सार को जानना होगा। विविधता, परिवर्तन एवं बहुलतावादी ज्ञान के महत्व पर जोर देने वाली ब्रैडले की अवधारणा के विपरीत, शंकराचार्य पूर्णत्व के ज्ञान पर बल देते हैं। इस रूप में जहां शंकराचार्य विशुद्ध निषेध पद्धति से आगे बढ़ते हुए बहुलता से परे परमसत् की सिद्धि पर जोर देते हैं; तो वही ब्रैडले मात्र निषेध के माध्यम से आगे बढ़ते हैं और यह प्रदर्शित करते हैं कि यह निषेध पूर्ण निषेध नहीं है, अपितु परमार्थ की दृष्टि से यह वस्तुओं की बहुलता की पुष्टि मात्र है। यहां पर एक समस्या सार्थक होती है कि यदि ईश्वर को इस जगत का सृष्टा, पालनकर्ता, संहारक नहीं स्वीकार किया जाता है, तो ईश्वर को मानने का क्या प्रयोजन है? अर्थात् ब्रैडले के दर्शन में ईश्वर से तात्पर्य क्या है? ब्रैडले की मान्यता है कि ईश्वर की अवधारणा एक धार्मिक अवधारणा है, लेकिन जब दर्शन की दृष्टि से देखा जाता है तो यह अवधारणा निरपेक्ष की अवधारणा में रूपांतरित हो जाती है जो कि एक ओर मानव से तो दूसरी ओर ईश्वर से संबंधित है। धर्म में ईश्वर की पूजा सर्वोच्च सत्ता के रूप में की जाती है और धार्मिक चेतनायुक्त मानव द्वारा ही ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता की उपाधि प्रदान की जाती है। उपासना के द्वारा उपासक अर्थात मानव एवं पूज्य अथवा ईश्वर के मध्य पारस्परिक संबंध स्थापित होता है। मानव ईश्वर के प्रति समर्पित होता है और ईश्वर अपने भक्त को प्रत्युत्तर देते हैं, परंतु ईश्वर को सीमितता एवं व्यक्तित्वपूर्णता के रूप में मानना चाहिए, ताकि वह सीमित मानव की प्रार्थनाओं का उत्तर दे सके। एक सीमित जीव से संबंधित होने के लिए ईश्वर को भी स्वयं सीमित होना होगा। इस कारण ही धार्मिक ईश्वर जिसे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी एवं पूर्ण सत् माना जाता है, वह सीमित एवं वैयक्तिक होने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। जब कभी हम सीमितता एवं व्यक्तित्वपूर्णता को ईश्वर की अवधारणा से पृथक कर देते हैं, तो यह ईश्वर की धार्मिक अवधारणा नहीं रह जाती है, अपितु यह निरपेक्ष की दार्शनिक अवधारणा में परिणत हो जाती है।

इस प्रकार, जब हम उपरोक्त दोनों दार्शनिकों की निरपेक्ष एवं ईश्वर की अवधारणाओं का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं, तो उनमें कुछ समानताओं के साथ ही साथ कुछ विषमताओं को भी पाते हैं। साम्यता की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ईश्वर के प्रत्यय को शंकराचार्य एवं ब्रैडले दोनों ने अपने दर्शन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है और दोनों यह स्वीकार करते हैं कि आनुभविक स्तर पर ईश्वर को सर्वोच्च सत्ता माना जाना चाहिए क्योंकि ईश्वर के बिना कोई धार्मिक चेतना जाग्रत नहीं हो सकती है। ब्रैडले का मत है कि निरपेक्ष के ज्ञान के लिए निरपेक्ष होना पड़ेगा जो कि शंकराचार्य की अपरोक्षानुभूति के ही समान है। शंकराचार्य ने ब्रह्म ज्ञान के लिए "साधन चतुष्टय अर्थात् नित्यानित्यवस्तुविवेक, इहामुत्रार्थभोगविराग, शमदमादिसाधनसम्पत एवं मुमुक्षुत्व"[6] से संपन्न साधक की चर्चा की है। उनका मानना है ऐसा साधक आत्मज्ञानी होने के लिए गुरु की शरणागत होकर गुरु के वचनों, शिक्षाओं आदि के श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन के द्वारा मोक्षत्व को प्राप्त कर सकता है। ब्रैडले भी शंकराचार्य द्वारा प्रस्तुत अपरोक्षानुभूति को अव्यवहित अनुभूति के रूप में स्वीकार करते हैं, परंतु उनका मानना है कि मानव सत् को उसकी पूर्णता में आत्मसात नहीं कर सकता है। इस प्रकार शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दर्शन में निरपेक्ष एवं ईश्वर संबंधी विचारों में कुछ साम्यताएं निहित हैं, किंतु जैसे-जैसे हम अधिक गहनता से विश्लेषण करते हैं तो हमें वैषम्य के भी कुछ बिंदु प्राप्त होते हैं जो कि निम्नवत है-

i. शंकराचार्य के दर्शन में ईश्वर का प्रत्यय इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि ईश्वर को स्वीकार के बिना सृष्टि की पूरी प्रक्रिया अस्पष्ट एवं संदिग्ध हो जाएगी। अतएव उनके दर्शन में सृजन का निहितार्थ ईश्वर है और ईश्वर सर्जन को प्रतिपन्न करता है। परंतु ब्रैडले का ईश्वर संबंधी विचार इससे

सर्वथा भिन्न है। उसके अनुसार ईश्वर जगत का सृष्टा नहीं है, अपितु अन्य आभासों के समान ही एक आभास है। यद्यपि ईश्वर में अन्य आभासों से अधिक उच्च स्तर का सत्यांश होता है, इस कारण उसे अन्य आभासों के सृष्टा के रूप में विचार करना असंगत है।

ii. शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर ब्रह्म का आभास नहीं है और न तो वह ब्रह्म का कोई अंश है, अपितु अविद्या के प्रभाव के कारण मानव ब्रह्म को ही ईश्वर के रूप में स्वीकार कर लेता है। दूसरी ओर ब्रैडले के दर्शन में ईश्वर निरपेक्ष सत्ता का एक आभास है। प्रत्युत ब्रैडले निरपेक्ष के इस आभास से निरपेक्ष की पूंजी की ओर इंगित करते हुए मानता है कि ईश्वर भी निरपेक्ष की एक संपत्ति है।

iii. ब्रैडले ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एवं पूर्ण तो मानता है, किन्तु इसी के साथ-साथ वह ईश्वर को सीमित एवं वैयक्तिक भी मानता है जो कि अतार्किक एवं वदतो-व्याघाती है। शंकराचार्य के अनुसार ईश्वर का शासक, पालनकर्ता एवं जगत के संहारक के रूप में एक अद्वितीय लौकिक महत्व है। शंकराचार्य के अनुसार "ईश्वर जो अतिउत्कृष्ट सीमित अनुलग्नकों के साथ सुसज्जित है, वह व्यक्तिगत आत्म पर शासन करता है जो कि केवल निम्न अनुलग्नकों से संपन्न है"।[7] उनका मानना है कि इसमें कोई व्याघात नहीं है।

iv. शंकराचार्य निरपेक्ष एवं ईश्वर के मध्य कोई अंतर नहीं मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर की कृपा से निरपेक्ष अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह ज्ञान ब्रह्म एवं जीव के मध्य तादात्म्य का साक्षात्कार कराता है। अतएव शंकराचार्य मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए शास्त्रों के महत्व को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं कि गुरु एवं श्रुतियां ही ऐसे निर्देश प्रदान करते हैं जो सक्रिय रूप से ज्ञान प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होता है, जिससे अज्ञानता का आवरण हट जाता है और मानव को सत् का साक्षात्कार होता है। शंकराचार्य की अवधारणा की विपरीत, ब्रैडले ने कभी भी एवं कहीं भी ईश्वर को निरपेक्ष के समकक्ष नहीं माना है। इस कारण ब्रैडले परमलक्ष्य की प्राप्ति में अनुग्रह एवं धर्मग्रंथों के महत्व पर बल देता है।

निष्कर्ष:-

प्रस्तुत शोध-पत्र में उपरोक्त विमर्श एवं गहन विश्लेषण से ज्ञात होता है कि अद्वैत वेदांती शंकराचार्य एवं पाश्चात्य समकालीन दर्शन के आरंभिक दार्शनिक एफ०एच० ब्रैडले का निरपेक्ष संबंधी विचार अनेक विषमताओं के होते हुए भी एक समान प्रतीत होते हैं, क्योंकि वे दोनों अपने निरपेक्ष की अभिव्यक्ति में भिन्न हो सकते हैं, किंतु उनके दार्शनिक दृष्टिकोण की अंत: मौलिकता एक ही है। क्योंकि शंकराचार्य एवं ब्रैडले के दार्शनिक विचार अपनी पृथक-पृथक संस्कृतियों एवं विचारधाराओं से प्रभावित हैं। ब्रैडले पाश्चात्य दार्शनिक परंपरा से पोषित होने के फलस्वरूप बुद्धि के महत्व को तो स्वीकारते ही हैं, किंतु साथ ही साथ हुए भावना एवं संकल्प को भी स्वीकार करते हैं और परमार्थ को अंत: प्रज्ञात्मक अनुभूति का विषय मानते हैं। इस कारण वे ज्ञानमीमांसीय एवं तत्वमीमांसीय दृष्टि से प्रतिप्रज्ञावादी दार्शनिक भी कहे जाते हैं। शंकराचार्य भारतीय आध्यात्मिक परंपरा से पोषित हुए हैं जिसके फलस्वरूप उनके विचारों का मूल वेद, पुराण, उपनिषद एवं गीता आदि से प्रभावित है। प्रत्युत स्पष्ट है कि शंकराचार्य का ब्रह्म तथा ब्रैडले का निरपेक्ष सत् के ऐक्य भाव का ही प्रतिरूप है, यद्यपि दोनों ने अपने-अपने परमसत् का अभिधान पृथक ढंग से किया है अर्थात् दोनों दार्शनिक एक ही सत्य की बात तो करते हैं, किंतु दोनों का मार्ग भिन्न-भिन्न है। इसी कारण से कहा गया है कि "मुंडे मुंडे मतिर्भिन्ना कुंडे कुंडे नवं पय:। जातौ जातौ नवाचार: नवा वाणी मुखे मुखे"।। अर्थात् प्रत्येक मानव के बुद्धि का स्तर एवं विचार करने की शैली सदैव भिन्न-भिन्न होती है और इसी तरह प्रत्येक कूप के पानी की गुणवत्ता भी पृथक-पृथक होती है, विभिन्न जातियों एवं पंथों की जीवन-शैली तथा रीति-रिवाज और विभिन्न राष्ट्रों एवं नस्लों के लोगों की भाषा एवं बोली भी सदैव एक दूसरे से भिन्न ही होती है। हालांकि शंकराचार्य एवं ब्रैडले दोनों ने एक ही परमसत् के अद्वैत निरपेक्ष भाव का ही वर्णन किया है, चाहे उनके दर्शन में जगत-जीव संबंधी अवधारणा भिन्न हो या फिर निरपेक्ष या ब्रह्म को व्यक्त करने का तरीका भिन्न हो लेकिन भाव परस्पर एक जैसे ही प्रतीत होते हैं। अत: निष्कर्षरूपेण कहा जा सकता है कि शंकराचार्य एवं ब्रैडले के संदर्भ में ऋग्वेद का यह श्लोक पूर्णत: चरितार्थ होता है कि "एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति"[8] अर्थात सत् एक ही है, विद्वान लोग उसका उल्लेख अनेक रूपों में करते हैं।

संदर्भ:-

1 Radhakrishnan, S. (1927). *Indian Philosophy*. Vol. 2, London: George Allen & Unwin Ltd., p. 524.

2 छान्दोग्य उपनिषद, 6/2/1।

3 Ibid., p. 468.

4 निर्वाण दशकम्, 10।

5 Bradley, F.H. (1962). *Essays on Truth and Reality*. Oxford: Clarendon Press, p. 428.

6 विवेकचूड़ामणि, 19।

7 शारीरक भाष्य 2/3/45।

8 ऋग्वेद, 1/164/46।